शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है ।

सिद्ध मार्ग

© Shanti Mandir अप्रैल २०१४, संस्करण १६

हमारे यहाँ शास्त्रों में कहा जाता है कि हम सद्गुरु से दीक्षा चार प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं, दर्शन से, शब्द से, स्पर्श से और संकल्प से।

प्रिय आत्मन्, सप्रेम जय गुरुदेव ! सिद्ध मार्ग ई पत्रिका का सोलहवाँ अंक प्रस्तुत है। इस अंक में गुरुदेव महामण्डलेश्वर स्वमी नित्यानन्द जी द्वारा कुछ समय पूर्व विजयनगर, राजस्थान में दिये गये प्रवचन के सम्पादित अंश प्रस्तुत हैं।

"श्रीगुरुदेव का प्रवचन"

भारत वर्ष में ऐसी बहुत सी जगह हैं जहाँ हमारे पूज्य बाबा मुक्तानन्द जी के भक्त रहते हैं। उन भक्तों ने कई प्रकार से दीक्षा प्राप्त की है, कइओं ने साक्षात् मिल के दीक्षा प्राप्त की है, परन्तु कइओं को उनकी पुस्तक के माध्यम से, उनके चित्र के माध्यम से और सत्संग के माध्यम से दीक्षा प्राप्त हुई है। हमारे यहाँ शास्त्रों में कहा जाता है कि हम सद्गुरु से दीक्षा चार प्रकार से प्राप्त कर सकते हैं, दर्शन से, शब्द से, स्पर्श से और संकल्प से। दर्शन तो हम चित्र का भी कर सकते हैं, साक्षात् उनकी मूर्ति का दर्शन कर सकते हैं। अगर हमारा भाव हो तो वो मूर्ति भी

अगर सद् गुरु की दृष्टि भी हमारी ओर पड़ जाती है तो उससे भी हमें कुछ प्राप्त होता है।

हमको कुछ बोलती है, मार्ग दर्शन देती है, कुछ बताती है। जब हम उनसे मन्त्र दीक्षा लेते हैं, गुरुमन्त्र लेते हैं, उससे हमको कुछ प्राप्त होता है। पूज्य बाबाजी मोरपंख से स्पर्श करते थे। धीरे धीरे लोगों की संख्या बढ़ने लगी और सभी चाहते हैं कि सद्गुरु हमको स्पर्श करें, स्पर्श से मुझे कुछ प्राप्त हो जाये पर अगर सद्गुरु की दृष्टि भी हमारी ओर पड़ जाती है तो उससे भी हमें कुछ प्राप्त होता है। तो ऐसे इस भारत भूमि पर बड़े बड़े सिद्ध सन्त हुए जिन्होनें अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करके शेष जो जीवन बचा उसमें प्रयास किया कि जो भी मेरे पास आये उनके लिए मैं कुछ करूँ। जब ऐसे हमारे सद् गुरु बाबा मुक्तानन्द जी अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के पश्चात् करीब बीस-बाईस वर्ष जो उनका जीवन शेष था उस समय में उन्होंने भारत भ्रमण किया, विदेश भ्रमण किया और कई लोगों को ध्यान, संकीर्तन, जप, शास्त्र, स्तोत्र पाठ इन सबका एक सुन्दर अभ्यास उन्होंने शुरु कराया। करते करते मनुष्य के अन्दर उन्होंने वो जिज्ञासा जागृत की, कि मैं इस मनुष्य देह में आया हूँ और मुझे जाते समय कुछ प्राप्त करके ले जाना चाहिए। जब मैं इस देह को त्याग कर जाऊँ तब मैं अपने साथ कुछ ले जाऊँ। और हमारा भाग्य था कि उनका दर्शन भी हुआ, स्पर्श भी हुआ और उनसे गुरुमन्त्र भी प्राप्त किया। तो हम यह सोचते हैं कि उनके ही जो आदेश थे उनकी ही जो सिखावनी थी, उसको लेकर हम भ्रमण करें, पुनः वो जागृति, वो चेतना जनता में लायें। हम गाते

हैं "भक्तकार्यैक देहाय नमस्ते चित्सदात्मने" कि सन्त जन अपना जीवन भक्तों को अर्पण करते हैं, पूरा जीवन उनका भक्त के लिए होता है और जो हमेशा ही आत्मा का स्मरण करते हैं और हमसे भी आत्मा का स्मरण करवाते हैं ऐसे सद्गुरु को हम नमन करते हैं। पूज्य बाबाजी ने भ्रमण करते करते राजस्थान में भी बहुत समय निकाला। साधना काल में साधु घूमते रहते हैं कि हमको कोई सद्गुरु ऐसा मिले, कुछ दीक्षा ऐसी मिले जिससे मेरी मुक्ति हो जाये। दीक्षा का अर्थ ही ऐसा होता है कि "दीयते यद्दानं क्षीयते पाशबन्धनम्" कि सद्गुरु से हमको एक दान मिलता है। हर कोई मनुष्य अपने जीवन में कुछ न कुछ दान देता है तो सद्गुरु ऐसा दान देते हैं जिस दान को प्राप्त करके हमारा जो पाशबन्धन है उससे हम मुक्त हो जाते हैं। जब तक हम अपने आप को जानते नहीं, समझते नहीं और पहचानते नहीं तब तक हमारा जीवन पशुतुल्य है, हम एक अज्ञान के पाश से बँधे हुए हैं। हम विचार करें कि हम इस देह में आये हैं, ये शरीर हमें प्राप्त हुआ है, परन्तु मैं इस देह में आकर अपने लिए, अपनी उन्नति के लिए क्या कर रहा हूँ। संत जन हमसे यही प्रश्न करते हैं। जब हम उनके पास जाते हैं हम तो यही आशा लेकर जाते हैं कि महाराज कोई आशीर्वाद दे दो, कुछ हमें बता दो परन्तु वो हमें जगाना चाहते हैं, बताना चाहते हैं कि तुम अपने आप को जानो कि तुम कौन हो। बाबाजी एक कहानी कहा करते थे, हंस और उल्लू की- एक दिन हंस सूर्य तथा उसके प्रकाश का

हम विचार करें कि हम इस देह में आये हैं, ये शरीर हमें प्राप्त हुआ है, परन्तु मैं इस देह में आकर अपने लिए, अपनी उन्नति के लिए क्या कर रहा हूँ।

सन्त हमसे आत्मप्रकाश की चर्चा करते हैं, हमें कहते हैं कि तुम अन्तरमुखी हो जाओ और अन्तर की ओर जाओ, अपने अन्तर में स्थित प्रकाश का अनुभव करो।

गुणगान कर रहा था, हंस दिन का पक्षी है इसलिए वो दिन का गुणगान कर रहा था। जो उल्लू है वह रात्रि का पक्षी है, उल्लू हंस को कहता है तुम झूठ बोलते हो कि प्रकाश तो हमने कभी देखा ही नहीं, तुम किस सूर्य की बात करते हो मैंने तो उसे देखा ही नहीं, हमने तो जहाँ भी देखा है सिर्फ अन्धकार ही अन्धकार देखा है। कुछ समय तक दोनों की चर्चा चलती है तो बाबाजी कहते थे कि यही चर्चा सन्त और जीव की भी चलती है। सन्त हमसे आत्मप्रकाश की चर्चा करते हैं, हमें कहते हैं कि तुम अन्तरमुखी हो जाओ और अन्तर की ओर जाओ, अपने अन्तर में स्थित प्रकाश का अनुभव करो। परन्तु हम सन्त से कहते हैं आप किस प्रकाश की चर्चा करते हो मैं नही जानता हूँ क्योंकि जब भी मैं आँख बन्द करके अपने अन्तर की ओर जाता हूँ तो मेरी कल्पनाओं के सिवाय मुझे तो अन्धकार का ही दर्शन होता है और मैं आत्मप्रकाश का दर्शन नहीं करता हूँ। परन्तु जैसे कि हम जानते हैं कि हंस सत्य कह रहा है कि सूर्य है, सूर्य का प्रकाश है। क्योंकि उल्लू रात्रि का पक्षी है और उसे प्रकाश का ज्ञान नहीं इसका ये अर्थ नहीं कि सूर्य नहीं है, सूर्य तो है परन्तु उसे सूर्य का अनुभव नहीं। ठीक उसी तरह सन्त हमें आत्मप्रकाश का, आत्मज्ञान के बारे में बताते हैं परन्तु हमें उसका अज्ञान है। हम उसको जानते नहीं, समझते नहीं इसीलिए हम समझ नहीं पाते हैं कि सन्त हमें किस आत्मज्ञान और आत्मप्रकाश का ज्ञान देना चाहते हैं। हम उस ज्ञान को लेना नहीं चाहते क्योंकि हम उसे जानते ही नहीं। तो

गीता में भी भगवान् कहते हैं कि हे मनुष्य, हे अर्जुन, अगर तू उस आत्मा को जानना चाहता है, पहचानना चाहता है तो तुझे ध्यान करना है।

इसके लिए बाबाजी कहते थे "जाग रे नर जाग प्यारे अब तो गाफ़िल जाग रे" हमें जागना है, अभी तो जागो लेकिन हम कहेंगे कि मैं तो जागा ही तो हुआ हूँ, मैं कहाँ सो रहा हूँ। अभी अगर मैं आपसे पूछूँ कि आप जागे हो क्या तो आप यही कहने वाले हैं कि मैं तो जागा हूँ मैं कहाँ सोया हूँ। परन्तु सन्त कहते हैं कि जिस आत्मज्ञान का, जिस आत्म के बारे में हमें जानना चाहिए, पहचानना चाहिए उस ज्ञान की दृष्टि से हम सोये हुए हैं। उस ज्ञान की ओर देखते हुए हमको ये पता चलता है कि वास्तव में मैं जागा नहीं हूँ, क्योंकि मैं उस ज्ञान को जानता नहीं, पहचानता नहीं। उसको जानने के लिए हमको ध्यान करना है। गीता में भी भगवान् कहते हैं कि हे मनुष्य, हे अर्जुन, अगर तू उस आत्मा को जानना चाहता है, पहचानना चाहता है तो तुझे ध्यान करना है। तो फिर प्रश्न उठता है - ध्यान क्या है, ध्यान कैसे करूँ, कब करूँ, ध्यान किसका करूँ ? तो बाबाजी कहा करते थे कि ध्यान के लिए सर्वप्रथम तो हमको एक आसन चाहिए। बैठते सब लोग हैं परन्तु हमारा जो आसन है जिसको पतञ्जलि "स्थिरं सुखं आसनम्" ऐसा बताते हैं वह आसन हमारा स्थिर हो जाये। हम बैठते हैं परन्तु कभी शरीर में किसी ना किसी तरह की तकलीफ़ होती है तो हम स्थिर हो कर बैठ नहीं पाते हैं। बैठें तो सुखी भी हो जायें। मन हमारा चञ्चल न हो। आप विचार करो जब आप पूजा के लिए बैठते हैं उसी समय सभी बातें याद आती हैं। कई लोगों का यह तकरार है कि अन्य समय तो कोई चिन्ताएँ, कल्पनाएँ आती

हमें उस परमात्मा के बारे में, उस प्रभु के बारे में रुचि जगानी है। जब वह रुचि जागरित होगी तभी हम जागरित हुए हैं ऐसा हम कह सकते हैं।

नहीं परन्तु जब ही भजन, ध्यान और पूजा में बैठो तो उसी समय ये सब बातें याद आती हैं। तो उसका मतलब हमारा मन एकाग्र होता नहीं। हमारा मन वहाँ लगता है जहाँ उसको रुचि है। तो अब हमें उस परमात्मा के बारे में, उस प्रभु के बारे में रुचि जगानी है। जब वह रुचि जागरित होगी तभी हम जागरित हुए हैं ऐसा हम कह सकते हैं। और जब वह रुचि जागरित हुई है तभी हमारा जो आसन है, स्थिर हो जायेगा और हम सुख का अनुभव करेंगे। तो उसके लिए दूसरा काम है प्राणायाम। हर मनुष्य, हर प्राणी श्वास लेता है और श्वास छोड़ता है और उसके बिना वह जी नहीं सकता है परन्तु अधिकांश मनुष्य, क्योंकि उसका मन चंचल है, चिन्तन से भरा हुआ होता है, तो उसका श्वास भी जल्दी से अन्दर जाता और जल्द ही बाहर आता है, जैसे हम दौड़कर श्वास जल्दी लेते हैं। योगियों का कहना है अधिकांश मनुष्य जानता नहीं परन्तु उसका श्वास पे श्वास छोटा होता जाता है। तो इसके लिए बाबाजी कहा करते थे एक सुलभ प्राणायाम है। आज कल हम टी.वी. पर देखते हैं कि बहुत सारे अलग अलग प्रकार के प्राणायाम हैं, परन्तु एक सुलभ प्राणायाम है जो हम करते ही हैं परन्तु जो हमारा श्वास पे श्वास है बहुत तीव्र होता है। इसके लिए हमको अभ्यास करना है कि जब हम श्वास अन्तर की तरफ लेते हैं वह श्वास लम्बी हो, वही श्वास जब हम बाहर निकालें तब उसे पूर्णरूप से बाहर निकालें। ऐसे ही आप अभ्यास करो, पहले बैठना सीखो, बैठना इतना सुलभ

स्थिर सिर्फ ध्यान और पूजा के समय नहीं बल्कि हमें स्थिरता हमारे जीवन में भी अनुभव होनी चाहिए।

नहीं क्योंकि मन चंचल है हमें बैठने भी नहीं देता है इसलिए हम पहले बैठना सीखें। एक महात्मा भ्रमण करते-करते आये और एक मन्दिर में वो रहने लगे तो वहाँ का जो मैनेजर था, उस मैनेजर ने उस महात्मा से कहा कि महाराज मैंने तीन सप्ताह से ये देखा है कि आप सिर्फ बैठे ही रहते हो, कुछ करते ही नहीं। तो महाराज ने कहा कि बैठो आप भी मैं अभी बताता हूँ मैं क्या करता हूँ। दो मिनट बैठा, बोला महाराज बताओ। महाराज बोले अभी थोड़ी देर बैठो तो सही। पाँच मिनट हुआ, मेनेजर बोला महाराज आप कुछ बताते हो या मैं चलूँ। तो महाराज ने कहा तुम कहते हो कि मैं तीन सप्ताह से बैठा हूँ और क्या करता हूँ, तुम तो पाँच मिनट भी बैठ नहीं सकते। ऐसा हमारा मन चंचल है हमें पाँच मिनट भी बैठने नहीं देता। इसलिए सबसे पहले हम बैठना सीखें। मैं कहता हूँ कि हमें स्थिर सिर्फ ध्यान और पूजा के समय नहीं बल्कि हमें स्थिरता हमारे जीवन में भी अनुभव होनी चाहिए।

"सद्गुरुनाथ महाराज की जय"